जोबनेर कृषि

अक्टूबर, 2025 वर्ष : 10 अंक : 10 प्रति अंक मूल्य 25 रुपये वार्षिक शुल्क : 250 रुपये

प्रसार शिक्षा निदेशालय

श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय

जोबनेर, जिला–जयपुर (राज.) 303 329

रबी फसलों में उच्चतम उत्पादन और आर्थिक लाभ हेतु प्रभावी पोषक तत्व प्रबन्धन तकनीकें

डॉ. बी.एल. दूधवाल[1], डॉ. रोशन चौधरी[1], डॉ. बसन्त दादरवाल[1]
एवं डॉ. सुरेश कुमार दूधवाल[2]
[1]श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर
[2]डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

कृषि में पोषण प्रबन्धन की दक्ष तकनीकें फसल की उत्पादकता और लाभप्रदता बढ़ाने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। विशेषकर रबी फसलों (गेहूँ, जौ, सरसों, मटर, चना आदि) में संतुलित और वैज्ञानिक पोषण प्रबंधन किसानों को अधिक उत्पादन एवं बेहतर मुनाफा दिला सकता है।

रबी फसलों में पाषण प्रबंधन का महत्व : रबी फसलें अपेक्षाकृत ठण्डे मौसम में ली जाती है और उनकी उत्पादन क्षमता काफी हद तक मिट्टी की उर्वरता और उपलबध पोषक तत्वों पर निर्भर करती है। पोषक तत्वों की कमी या असंतुलन सीधे पैदावार पर असर डाल सकता है। इसलिए पोषण प्रबंधन की आधुनिक एवं दक्ष तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

पोषण प्रबंधन की दक्ष तकनीकें :

1. मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक उपयोग

- ✧ खेती शुरू करने से पहले मृदा परीक्षण कराना चाहिए ताकि यह पता चल सके कि किस पोषक तत्व की कमी और जरूरत है।
- ✧ मृदा परीक्षण आधारित उर्वरक प्रबंधन से केवल आवश्यक मात्रा में पोषक तत्वों का प्रयोग होता है, जिससे लागत भी घटती है और परिणाम भी बेहतर मिलते हैं।

2. संतुलित उर्वरक प्रबंधन

- ✧ केवल नाइट्रोजन पर निर्भर न रहकर फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर, जिंक, बोरॉन, जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का संतुलित, और समय पर उपयोग जरूरी है।
- ✧ गेहूँ में नाइट्रोजन की तीन किस्तों में आपूर्ति लाभकारी रहती है– बुवाई के समय, मुख्य जड़े (Crown root) बनने पर और बालियां निकलने के समय।

3. जैव उर्वरकों का प्रयोग

- ✧ राइजोबियम, एजास्पिरिलम, फॉस्फेट सोल्यूबिलाइजिंग बैक्टीरिया (PSB) तथा माइक्रोराइजा जैसे जैव उर्वरक फसल में पोषण उपलब्धता बढ़ाते हैं।
- ✧ ये मृदा की संरचना को सुधारते हैं और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता को घटाते हैं।

4. फसल अवशेष प्रबंधन और कार्बनिक खाद

- ✧ फसल अवशेषों को खेत में मिलाने से जैविक कार्बन बढ़ता है और मिट्टी की जलधारण क्षमता में सुधार होता है।
- ✧ गोबर की खाद, कम्पोस्ट और वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग मिट्टी की लम्बी अवधि की उर्वरता भी बनाए रखता है।

5. उर्वरकों का स्थान विशेष प्रयोग

- ✧ बुआई के समय बीज के पास (Spot placement) या कतारों में उर्वरक डालना छिड़काव से अधिक प्रभावी है।
- ✧ ड्रिप या स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों के साथ घुलनशील उर्वरकों का प्रयोग (फर्टिगेशन) पोषण दक्षता को बढ़ाता है।

6. एकीकृत पोषण प्रबंधन (INM)

- ✧ रासायनिक उर्वरक, जैव उर्वरक और जैविक खाद का सम्मिलित उपयोग ही सबसे प्रभावी तरीका है। जिससे मिट्टी की उर्वरता बनी रहती है।
- ✧ इससे मिट्टी की उर्वरक क्षमता, फसल की गुणवत्ता और पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित होती है।

लाभ :

- ✧ संतुलित पोषण से फसल की पैदावार 15–30 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है।
- ✧ उर्वरक का वैज्ञानिक एवं दक्ष उपयोग लागत को कम करता है और लाभांश बढ़ाता है।
- ✧ दीर्घकालिक रूप से मृदा स्वास्थ्य बेहत्तर होने से मृदा की निरन्तर उत्पादन क्षमता बनी रहती है।

इन उपायों को अपना कर किसान बन्धु अपनी रबी फसलों की उत्पादकता और लाभप्रदता दोनों में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। दक्ष पोषण प्रबन्धन, मृदा परीक्षण, संतुलित उर्वरक, जैव–उर्वरक तथा नई तकनीकों का समावेश, सतत और लाभकारी खेती की आधार शिला है।

पालक की उन्नत खेती की बारीकियाँ

ओमप्रकाश[1], विनीता राजपूत[2], सुनील कुमार[2] एवं
नरेन्द्र कुमार[2]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहाबाद, [2]कृषि विज्ञान केन्द्र, सिरसा
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरे पत्ते वाली सब्जियों में पालक एक प्रमुख सब्जी है। पालक की कोमल पत्तियों व डंठल को कच्ची अवस्था में सलाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। पालक को अकेले और दूसरी सब्जियों में मिलाकर सब्जी बनाई जाती है। इससे कई प्रकार के व्यंजन भी बनाए जाते हैं। इसमें विटामिन और खनिज लवण भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं। पालक विटामिन ए, सी, के1, आयरन, फोलिक एसिड और कैल्शियम जैसे आवश्यक पोषक तत्वों का एक उत्कृष्ट स्रोत है। इसमें ल्यूटिन, जेक्सैंथिन और क्वेरसेटिन जैसे शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट होते हैं। जो ऑक्सीडेंटिव तनाव को कम करते हैं। विटामिन सी और एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होने के कारण यह प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करता है और संक्रमणों से लड़ने में मदद करता है। पालक में मौजूद उच्च फाइबर सामग्री स्वस्थ पाचन को बढ़ावा देती है। यह पोषक तत्वों से भरपूर, कम कैलोरी वाली और पानी की उच्च मात्रा वाला पौधा है। जो इसे वजन घटाने के लिए एक अच्छा विकल्प बनाता है। यह लौह, पोटेशियम और मैग्नीशियम जैसे महत्वपूर्ण खनिजों से भी भरपूर है।

पालक की खेती भारत में लगभग सभी राज्यों में की जाती

है। खासकर उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, गुजरात और राजस्थान में। यह उष्णकटिबंधीय और शीतोष्ण जलवायु में उगाई जा सकती है, जिससे यह विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के लिए अनुकूल है।

कैसी मिट्टी पालक के लिए उपयुक्त है ?

पालक की सफल खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली मिट्टी की आवश्यकता होती है। यह फसल विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाई जा सकती है, किन्तु रेतीली मिट्टी दोमट और जलोढ़ मिट्टी में सर्वोत्तम उत्पादन प्राप्त होता है। अम्लीय तथा जल भराव मिट्टियाँ पालक की वृद्धि के लिए उपयुक्त नहीं होती। बेहतर परिणाम के लिए मिट्टी का pH स्तर 6.0 से 7.0 के बीच होना चाहिए।

किस्म का चुनाव

पालक की बहुत सी किस्में उपलब्ध हैं जो हरियाणा और आसपास के क्षेत्र के लिए अच्छी है, जो कि इस प्रकार हैं :–

1. **जोबनेर ग्रीन :** यह एक अधिक पैदावार देने वाली उन्नत किस्म है, इस किस्म की पत्तियों का रंग एक समान हरी और रस से भरी होती है।
2. **ओंलग्रीन किस्म :** इस किस्म की पत्तियां कोमल तथा एक समान हरी होती है। इस किस्म की 5–6 बार कटाई की जा सकती है।
3. **एच.एस. 23 :** हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार द्वारा विकसित की गई इस किस्म की पत्तियां गहरी हरी, मोटी बड़ी और कोमल होती है। इस किस्म की फसल शीघ्र तैयार होती है। बिजाई के लगभग 30 दिन बाद इसकी पहली कटाई ली जा सकती है। इस किस्म की भी 6–8 कटाई की जा सकती हैं
4. **पंजाब ग्रीन :** पंजाब ग्रीन पालक की एक लोकप्रिय किस्म है। इसके पत्ते गहरे हरे और चमकील रंग के दिखाई देते हैं। बुवाई के लगभग 30 दिनों बाद यह पत्तियाँ कटाई के लिए तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज लगभग 125 क्विंटल प्रति एकड़ तक प्राप्त की जा सकती है। इस किस्म की विशेषता यह है कि इसमें ओंक्सैलिक अम्ल की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है, जिससे यह स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक लाभकारी मानी जाती है।
5. **पंजाब सिलेक्शन :** पंजाब सिलेक्शन पालक की एक उन्नत किस्म है। इसके पत्ते हल्के हरे रंग के, पतले, लम्बे एवं संकीर्ण आकार के होते हैं। स्वाद में इसके पत्ते हल्के खट्टे होते हैं, जिससे यह उपभोक्ताओं के बीच अलग पहचान रखती है। इस किस्म का तना जामुनी (बैंगनी) रंग का होता है, जो इसे अन्य किस्मों से विशिष्ट बनाता है। इसकी पैदावार लगभग 115 क्विंटल प्रति एकड़ होती है।
6. **थार हरिपर्णा :** हरिपर्णा पालक की एक उन्नत किस्म है, जिसे भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर द्वारा विकसित किया गया है। यह किस्म विशेष रूप से गर्म और शुष्क जलवायु में उगाई जाती है। इस किस्म की पत्तियां बड़ी, चिकनी, मुलायम और रसदार होती है। थार हरिपर्णा पालक की औसत उपज लगभग 154.72 क्विंटल प्रति हैक्टेयर होती है।
7. **पूसा विलायती पालक :** यह भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित एक स्वदेशी, उच्च उत्पादकता वाली पालक की किस्म है। इसकी पत्तियाँ पौष्टिक, कंटीली, हरी होती है तथा डंठल रसीले होते हें। यह कम अवधि में तैयार होने वाली फसल है, जो समतल एवं पहाड़ी दोनों क्षेत्रों में शीत ऋतु के दौरान खेती के लिए उपयुक्त है। इस किस्म से 2–3 बार कटाई संभव है, और औसत उपज लगभग 12 टन प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है।
8. **पूसा भारती :** यह भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित पालक की एक उन्नत किस्त है, जो अपनी उच्च, उपज, रोग प्रतिरोधक क्षमता और कम समय से तेजी से बढ़ने की विशेषता के लिए जानी जाती है। यह किस्म पूसा ज्योति से बेहतर है, इसके पत्ते समान रूप से हरे, कोमल और चौड़े होते हैं तथा इसे अगेती बुवाई के लिए उपयुक्त माना जाता है।
9. **पूसा ज्योति :** यह एक उच्च गुणवत्ता वाली, उत्पादक पालक की किस्म है जो कम रखरखाव वाली और उगाने में आसान है। यह भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित की गई है और अपनी स्वास्थ्यवर्धक, नरम और स्वादिष्ट पत्तियों के लिए जानी जाती है। किसान इस किस्म से लगभग 30–35 दिनों में पहली कटिंग ले सकते हैं। यह किस्म विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में अच्छा प्रदर्शन करती है और ठंडे मौसम में भी अच्छी उपज देती है।
10. **पूसा हरित :** यह संकर (हाइब्रिड) किस्म है, जिसे भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित किया गया है। यह किस्म उच्च उपज देने वाली, रोग प्रतिरोधी और अच्छी गुणवत्ता वाली है, जिसके पत्ते गहरे हरे रंग के और बड़े आकार के होते हैं। इस किस्म की सबसे खास बात यह है कि इस बीज बनाने वाले डंठल देर से निकलते हैं, जिससे बुवाई के बाद कई बार कटाई की जा सकती है। इसे पूरे साल मैदानी और पहाड़ी दोनों क्षेत्रों में उगाया जा सकता है।

खेत की तैयारी और बिजाई

इसकी बिजाई के लिए खेत की दो तीन बार जुताई करें व खेत को भुरभुरा बनाने के लिए हर जुताई के बाद सुहागा जरूर लगाएं। भुरभुरे खेत में बिजाई आसान हो जाती है। पालक की बुवाई वर्ष के लगभग सभी मौसमों में की जा सकती है। शीतकालीन फसल की बुवाई प्रायः सितम्बर से अक्टूबर के बीच की जाती है। जबकि बसन्त एवं ग्रीष्मकालीन फसल की बुवाई फरवरी के मध्य से अप्रैल तक की जाती है। बीज की मात्रा भी मौसम के अनुसार अलग–अलग रखी जाती है। शीतकालीन फसल के लिए लगभग 4 से 6 किलोग्राम तथा ग्रीष्मकालीन फसल के लिए 10–15 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ पर्याप्त होता है। बुवाई करते

समय बीजों को 3 से 4 सेंटीमीटर गहराई पर बोना चाहिए और कतार से कतार की दूरी लगभग 20 सेन्टीमीटर और पौधे से पौधे की दूरी 5 सेन्टीमीटर रखनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक :

पालक की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए खेत की तैयारी के समय पर्याप्त मात्रा में खाद उर्वरकों का प्रयोग करना आवश्यक है। प्रति एकड़ भूमि में लगभग 10–20 टन गोबर की सड़ी हुई खाद डालनी चाहिए। इसके साथ ही 35 किलोग्राम नत्रजन (N) जो लगभग 75 किलोग्राम यूरिया के बराबर है) तथा 12 किलोग्राम फॉस्फोरस (P_2O_2) (जो लगभग 75 किलोग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट के बराबर है) देना चाहिए।

पूरी गोबर की खाद, फॉस्फोरस तथा नत्रजन की आधी मात्रा बुवाई से पहले खेत की अंतिम जुताई के समय मिला देनी चाहिए। शेष नत्रजन की आधी मात्रा को दो बराबर भागों में विभाजित करके प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई के साथ देना चाहिए। इस प्रकार संतुलित खाद एवं उर्वरक प्रबन्धन करने से पौधों की वृद्धि बेहत्तर होती हैं, पत्तियां कोमल और हरी भरी रहती हैं तथा अधिक उपज प्राप्त होती है।

सिंचाई प्रबन्धन :

पालक की फसल में उचित जल प्रबन्धन अत्यन्त आवश्यक है। पहली सिंचाई बुवाई के तुरन्त बाद करनी चाहिए ताकि बीज अच्छी तरह से अंकुरित हो सके। इसके बाद सिंचाई की आवृति मौसम के अनुसार तय की जाती है। ग्रीष्मकालीन मौसम में मिट्टी जल्दी सुखने के कारण प्रत्येक 4–6 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करना आवश्यक है। जबकि शीतकालीन मौसम में तापमान कम होने के कारण सिंचाई का अन्तराल लगभग 10–12 दिन रखा जा सकता है।

खरपतवार नियन्त्रण :

फसल की प्रारम्भिक अवस्था में 2–3 बार निराई–गुड़ाई करें। ऐसा करने से खरपतवार भी नष्ट हो जायेंगे और फसल की बढ़वार भी अच्छी होगी।

फसल की कटाई और पैदावार :

पहली कटाई, बिजाई के लगभग 30–35 दिन बाद तक की जा सकती है। बाद की कटाईयां 15–20 दिन के अन्तराल पर की जाती है। ताजा मण्डी के लिए पालक की कटाई जमीन की सतह पर निचली पत्तियों के नीचे से करें। अगर पालक को प्रसंस्करण (प्रोसेसिंग) के लिए लेना हो तो इसकी कटाई जमीन की सतह से लगभग 2–3 सें.मी. ऊपर से करें। शीतकालीन मौसम में सामान्यतः कई बार कटाई की जा सकती है, जबकि ग्रीष्मकालीन मौसम में उच्च तापमान और नमी की कमी के कारण पौधे जल्दी सूख जाते हैं। इसलिए उस समय केवल एक ही कटाई लेना उपयुक्त होता है। कटाई के बाद पालक की पत्तियों को सावधानीपूर्वक साफ कर छांटना चाहिए ताकि ताजगी और गुणवत्ता बनी रहे। पत्तियों को नमी बनाए रखने के लिए गीले कपड़े या छायादार स्थान पर रखा जा सकता है। पालक की हरी पत्तियों की पैदावार 32–40 क्विंटल प्रति एकड़ हो सकती है। विपणन के लिए पालक पत्तियों को छोटे–छोटे गठ्ठरों में बांधकर स्थानीय मण्डियों या उपभोक्ता बाजारों तक पहुँचाया जाता है। ताजगी और हरेपन के कारण उपभोक्ता आकर्षित होते हैं, इसलिए समय पर कटाई और शीघ्र विपणन करना अत्यन्त आवश्यक है।

बीज उत्पादन :

पालक के बीज उत्पादन के लिए विशेष प्रबन्धन की आवश्यकता होती है ताकि उच्च गुणवत्ता वाला बीज प्राप्त किया जा सके। बीज उत्पादन के लिए खेत को अन्य किस्मों से कम से कम 1000 मीटर की दूरी पर अलग रखना आवश्यक है। बीज उत्पादन हेतु फसल की बुवाई अक्टूबर के दूसरे पखवाड़े में करनी चाहिए। अधिकतम बीज उपज प्राप्त करने के लिए बुवाई के लगभग 30 दिन बाद एक बार पत्तों की कटाई कर ली जाती है।, जिसके बाद फसल को बीज उत्पादन के लिए छोड़ दिया जाता है। बीज उत्पादन वाली फसल की कतार से कतार की दूरी 50 सेन्टीमीटर तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सेन्टीमीटर रखनी चाहिए। साथ ही प्रत्येक पाँच कतारों के बाद एक कतार खाली छोड़ा आवश्यक है ताकि फसल का निरीक्षण सुगमता से किया जा सके।

बीज की शुद्धता बनाए रखने के लिए कम से कम तीन बार खेत का निरीक्षण किया जाना चाहिए। पहला निरीक्षण शाकीय अवस्था में, दूसरा बोल्टिंग अवस्था में तथा तीसरा निरीक्षण फसल की कटाई से पूर्व। इस दौरान किसी भी प्रकार के ऑफ–टाइप' पौधे, रोग्रस्त पौधे, पत्तियों के आकार में भिन्नता दिखाने वाले पौधे तथा समय से पहले या बहुत देर से बोन्टिंग करने वाले पौधों का हटा देना चाहिए।

फसल की कटाई उस समय करनी चाहिए जब अधिकांश बीज डंठल भूरे रंग के हो जाएं। कटाई के बाद फसल को लगभग एक सप्ताह तक खेत में ही सुखाने के लिए छोड़ देना चाहिए। इसके बाद ही बीज क्लसिंग करके स्वच्छ, परिपक्व और गुणवत्तापूर्ण बीज प्राप्त किया जा सकता है।

रेडी कार्यक्रम : कृषि क्षेत्र में ग्रामीण उद्यमिता का सशक्त पहल

प्रियंका चौधरी[1], डॉ. सन्तोष देवी सामोता[2] एवं डॉ. हीना साहीवाला[2]

[1]स्नातकोत्तर छात्रा, कृषि विस्तार शिक्षा,

राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर

[2]सहायक आचार्य, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

भारत की 60 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या आज भी कृषि पर निर्भर है। अर्थ व्यवस्था में कृषि का योगदान महत्वपूर्ण रहा है, परन्तु समय के साथ–साथ यह महसूस किया गया कि पारम्परिक कृषि शिक्षा से विद्यार्थियों को व्यावसायिक अवसरों के लिए पूरी तरह तैयार नहीं किया जा सहा है। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए रेडी कार्यक्रम की शुरूआत की गई। यह कार्यक्रम भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) द्वारा वर्ष 2015 में लागू किया गया, जिसका उद्देश्य

कृषि शिक्षा को अधिक व्यावसायिक, व्यावहारिक और उद्यमिता आधारित बनाना है।

रेडी कार्यक्रम :

जिसका मूल उद्देश्य कृषि स्नातकों को व्यावसायिक दक्षता, उद्यमिता कौशल और ग्रामीण समस्याओं को समझने की क्षमता प्रदान करना है। यह कार्यक्रम कृषि शिक्षा को इस प्रकार से तैयार करता है कि विद्यार्थी न केवल अच्छी नौकरी के लिए तैयार हो, बल्कि वे स्वरोजगार और कृषि आधारित उद्यम स्थापित करने के लिए भी सक्षम बन सकें।

1. **रावे - ग्रामीण कृषि कार्य अनुभव :** इसका उद्देश्य छात्रों को ग्रामीण जीवन, कृषि प्रणालियों और किसानों की वास्तविक समस्याओं से परिचित कराना है। विद्यार्थी गांवों में रहकर किसानों के साथ कार्य करते हैं। जिससे उन्हें व्यवहारिक ज्ञान मिलता है।
2. Experimental Learning **(अनुभव आधारित शिक्षा) :** छात्र प्रयोगशालाओं, खेतों और कृषि परियोजनाओं में प्रत्यक्ष रूप से कार्य करते हैं। उन्हें तकनीकी, प्रबन्धन और व्यावसायिक निर्णय लेने की क्षमता विकसित करने में मदद करता है।
3. In-Plant Training : कृषि आधारित उद्योगों, कम्पनियों या संस्थानों में प्रशिक्षुओं को कार्य का प्रत्यक्ष अनुभव कराया जाता है। इससे छात्रों को कृषि व्यवसाय का वास्तविक वातावरण समझने का अवसर मिलता है।
4. Skill Development **(कौशल विकास) :** व्यवसाय संचालन, विपणन नीति, वित्तीय प्रबन्धन, आईटी और संचार कौशल जैसी क्षमताओं का विकास किया जाता है।
5. Agri-Clinics and Agri-Business Centres Training : छात्र कृषि क्लीनिक या कृषि व्यवसाय केन्द्र स्थापित करने की योजना बना सकते हैं और इसके लिए मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं।

रेडी कार्यक्रम के उद्देश्य :

- **प्रशिक्षण आधारित शिक्षा :** छात्रों को व्यावसायिक, तकनीकी और सामाजिक दक्षता प्रदान करना।
- **उद्यमिता को प्रोत्साहन :** कृषि क्षेत्र में स्वरोजगार और स्टार्टअप्स की संभावनाओं का बढ़ावा देना।
- **रोजगार सृजन :** छात्रों को नौकरी ढूंढने वाला नहीं, बल्कि नौकरी देने वाला बनाना।
- **कृषि नवाचार को बढ़ावा :** नवाचार के माध्यम से आधुनिक कृषि पद्धतियों को अपनाना।
- **ग्रामीण समाज से जुड़ाव :** गांवों की आवश्यकताओं और समस्याओं की समझ विकसित करना।

रेडी कार्यक्रम के लाभ :

- **प्रैक्टिकल ज्ञान :** विद्यार्थी कृषि के केवल सैद्धान्तिक नहीं, बल्कि व्यवहारिक पक्ष को भी सीखते हैं।
- **स्वरोजगार के अवसर :** कृषि स्नातक खुद का व्यवसाय शुरू करने के लिए तैयार हो जाते हैं।
- **कृषि क्षेत्र में स्टार्टअप :** नवाचार को बढ़ावा देकर युवा कृषि–उद्यमी बन सकते हैं।
- **समाज से जुड़ाव :** छात्रों को ग्रामीण जीवन की जमीनी हकीकत का अनुभव होता है।
- **आत्म निर्भरता :** विद्यार्थी आत्म निर्भर भारत की अवधारणा को साकार करने में योगदान करते हैं।

चुनौतियाँ और सुझाव

चुनौतियाँ :

- संसाधन की कमी (खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में)
- प्रशिक्षकों की गुणवत्ता में अन्तर
- छात्रों में जागरूकता की कमी

सुझाव :

- विश्वविद्यालयों और उद्योगों के बीच मजबूत समन्वय।
- नियमित मॉनिटरिंग और मूल्यांकन
- छात्रों की सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरणा कार्यक्रम

निष्कर्ष :

कार्यक्रम एक दूरदर्शी पहल है जो भारत के कृषि शिक्षा तंत्र को आधुनिक बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह न केवल विद्यार्थियों को सैद्धान्तिक ज्ञान से परे व्यावहारिक अनुभव देता है, बल्कि उन्हें उद्यमिता और नवाचार की ओर भी प्रेरित करता है। इस कार्यक्रम के माध्यम से कृषि स्नातक न केवल अपने भविष्य को सुरक्षित कर सकते हैं।

जलवायु परिवर्तन : मानवता के सामने सबसे बड़ा संकट

महेन्द्र कुमार सीमार[1] और हनुमान सिंह जाटव[2]
[1]स्नातकोत्तर, पादप प्रजनन और आनुवंशिकी विभाग,
[2]सहायक प्रोफेसर, मृदा विज्ञान विभाग,
कृषि महाविद्यालय (श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय)
फतेहपुर-शेखावाटी, सीकर, राजस्थान-332301

प्रस्तावना

हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं, वह जीवन से भरपूर है। यहाँ की जलवायु, प्राकृतिक संसाधन, जैव विविधता और संतुलित पारिस्थिति की तंत्र ने मनुष्य को विकास की नई ऊँचाइयों तक पहुँचने में मदद की है। लेकिन अब यही धरती संकट में है। यह संकट धीरे–धीरे बढ़ रहा है और इसका नाम है जलवायु परिवर्तन। यह सिर्फ पर्यावरण की समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संकट बनता जा रहा है। यदि हमने समय रहते कदम नहीं उठाए, तो इसका प्रभाव अगली पीढ़ियों तक गंभीर रूप से महसूस किया जाएगा।

जलवायु परिवर्तन का अर्थ और कारण

जलवायु परिवर्तन का अर्थ है पृथ्वी के जलवायु तंत्र में लंबे समय तक होने वाले असामान्य परिवर्तन। यह परिवर्तन प्राकृतिक हो सकते हैं, लेकिन आज के समय में मानव जनित कारणों की वजह से जलवायु में तेजी से बदलाव हो रहे हैं। इसके प्रमुख कारण हैं :–

1. **ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन :** औद्योगिक क्रांति के बाद से वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड जैसी गैसों की मात्रा तेजी से बढ़ी है। ये गैसें वातावरण में गर्मी को फँसाकर पृथ्वी का तापमान बढ़ाती हैं।
2. **वनों की कटाई :** वनों को नष्ट करने से कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करने की प्राकृतिक क्षमता घटती है, जिससे वायुमंडल

में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा और बढ़ती है।

3. **तेल, गैस और कोयले का उपयोग :** ऊर्जा उत्पादन के लिए जीवाश्म ईंधनों का जलाना जलवायु परिवर्तन का सबसे बड़ा कारक है।
4. **औद्योगिकीकरण और शहरीकरण :** तेजी से बढ़ते शहर, ट्रैफिक, फैक्ट्रियाँ और उपभोग की संस्कृति प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव डाल रही हैं।

जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणाम : जलवायु परिवर्तन के प्रभाव हर क्षेत्र और जीवन के हर हिस्से में दिखाई देने लगे हैं।

1. **तापमान में वृद्धि :** विश्व का औसत तापमान 1.1 डिग्री सेल्सियस से अधिक बढ़ चुका है। यह वृद्धि भले ही छोटी लगे, पर इसके प्रभाव बहुत गहरे हैं।
2. **ग्लेशियरों का पिघलना और समुद्र स्तर में वृद्धि :** हिमालय, अंटार्कटिका और आर्कटिक जैसे क्षेत्रों में ग्लेशियर तेजी से पिघल रहे हैं। इससे समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है, जिससे तटीय इलाकों में बाढ़ और डूबने का खतरा बढ़ रहा है।
3. **चरम मौसम की घटनाएं :** अत्यधिक गर्मी, लू, सूखा, अत्यधिक वर्षा, बर्फबारी और तूफानों की संख्या और तीव्रता में वृद्धि हो रही है। भारत में हाल के वर्षों में अनियमित मानसून, बेमौसम बारिश और बाढ़ की घटनाएँ बढ़ी हैं।
4. **कृषि और खाद्य सुरक्षा पर असर :** जलवायु परिवर्तन से कृषि पर गहरा असर पड़ा है। फसलें समय पर नहीं होतीं, कीटों का हमला बढ़ता है, और खाद्य उत्पादन घटता है।
5. **स्वास्थ्य समस्याएँ :** गर्मी से जुड़ी बीमारियाँ, पानी जनित रोग, और मच्छरों से फैलने वाले रोग जैसे डेंगू और मलेरिया बढ़ते जा रहे हैं।
6. **जैवविविधता को खतरा :** प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे हैं जिससे कई जीव–जंतु विलुप्त होने की कगार पर हैं। समुद्री जीवन भी प्रदूषण और गर्म होती जलवायु से प्रभावित हो रहा है।

समाधान और उपाय : जलवायु परिवर्तन को रोकना आसान नहीं है, लेकिन यदि हम सब मिलकर प्रयास करें, तो इसके प्रभावों को कम किया जा सकता है :

1. **नवीकरणीय ऊर्जा का उपयोग :** सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और जल ऊर्जा जैसे स्वच्छ स्रोतों का उपयोग बढ़ाना चाहिए ताकि जीवाश्म ईंधनों पर निर्भरता कम हो।
2. **वन संरक्षण और वृक्षारोपण :** हरित आवरण को बढ़ाने के लिए वनों की कटाई रोकनी होगी और अधिक से अधिक पेड़ लगाने होंगे।
3. **ऊर्जा की बचत :** घर, स्कूल, दफ्तर और फैक्ट्रियों में बिजली और ईंधन की बचत करनी चाहिए।
4. **पर्यावरण-अनुकूल जीवन शैली :** प्लास्टिक का कम प्रयोग, साइकल या सार्वजनिक परिवहन का उपयोग, पानी की बचत और कचरे का पुनः उपयोग जैसे छोटे–छोटे कदम भी बड़ा फर्क ला सकते हैं।
5. **नीतियाँ और अंतरराष्ट्रीय सहयोग :** सरकारों को कठोर पर्यावरण कानून बनाने चाहिए और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संधियाँ जैसे पेरिस समझौते का पालन करना चाहिए।

निष्कर्ष : जलवायु परिवर्तन केवल पर्यावरण की चुनौती नहीं है, यह एक नैतिक, सामाजिक और आर्थिक चुनौती भी है। इसका असर दुनिया के हर नागरिक, हर प्राणी और हर आने वाली पीढ़ी पर पड़ेगा। आज जरूरत है जागरूकता, जिम्मेदारी और सामूहिक प्रयासकी। यदि हम अभी नहीं जागे, तो भविष्य हमें कभी माफ नहीं करेगा।

मधुमक्खी : पालन एवं कृषि के महत्व

नेतराम[1], डॉ. जोगेन्द्र सिंह[2] अनुष्का कुन्तल[3] एवं शुभम खुराना[4]

[1]फार्म मेनेजर, कृषि महाविद्यालय,फतेहपुर-शेखावाटी

[2]सहायक आचार्य, कृषि महाविद्यालय, झिलाई (श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर)।

[3]विद्या वाचस्पति शोध छात्रा, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन, कृषि महाविद्यालय, कोटा।

[4]तकनीकी सहायक, खाद्य निगम, कोटा।

मधुमक्खियों का लाभकारी कीटों में विशिष्ट स्थान है। मधुमक्खी पालन एक कृषि आधारित उद्योग है, जिसकी जानकारी अत्यंत सरल है। इसमें कम लागत है, आमदनी अधिक एवं कम समय में अधिक लाभ प्राप्त होने लगता है। गांवों में आर्थिक विकास के लिए मधुमक्खी पालन से बेहतर कोई दूसरा घरेलू रोजगार नहीं है। जानकारी सरल होने के कारण कम पढ़ा–लिखा व्यक्ति भी इस व्यवसाय को कुशलतापूर्वक कर सकता है। गरीब, भूमिहीन भी इस व्यवसाय को 5 से 10 मधुमक्खी के बक्से से कम पूँजी से शुरू कर 3 वर्षो के अन्दर 50–100 बक्सों का मालिक बन सकता है एवं प्रतिवर्ष मधुमक्खी, मोम एवं मधु बेचकर लाखों रूपये की आमदनी प्राप्त कर सकता है। इस कार्य को करने में अधिक शारीरिक परिश्रम न होने से ग्रामीण महिलाएं एवं बच्चे भी अपने घरेलू कार्य के साथ आसानी से कर सकते हैं। अधिक पूँजी न लगने के कारण बेरोजगार नवयुवक भी इसे अपना रोजगार का साधन बना सकते है। मधुमक्खी पालन से गाँवों में मौन पेटिका तथा अन्य उपकरण बनाने वाले छोटे उद्योगों को भी बढ़ावा मिलता है। यह स्वरोजगार एवं अतिरिक्त आय का उत्तम घरेलू उद्योग है।

मधुमक्खी का अर्थ, प्रकार एवं परिवार के सदस्य :

मधुमक्खी का अर्थ : मधुमक्खी सामाजिक कीट का एक सर्वोत्तम उदाहरण है जो शहद एकत्र करके अपने परिवार का भरण–पोषण करती है । यह कीट हाइमेनोप्टेरा गण के एपिस वंश के अन्तर्गत आता है । मधुमक्खियों की तीन जातियां भारतीय मधुमक्खी (एपिस इण्डिका), चट्टानी मधुमक्खी (एपिस डोर्सोटा) व छोटी मधुमक्खी (एपिस फ्लोरिया) भारतवर्ष में पायी जाती हैं । एक विदेशी मधुमक्खी (एपिस मेलिफेरा) जिसे इटालियन या यूरोपियन मधुमक्खी कहते हैं, अब भारत में स्थापित हो गयी हैं एवं इसका प्रयोग व्यवसायिक दृष्टि से मधुमक्खी पालन के लिये किया जा रहा है।

मधुमक्खी के प्रकार : मधुमक्खियों की उक्त चारों प्रजातियों के बारे में संक्षिप्त जानकारी निम्नलिखित प्रकार से है–

(1) भारतीय मधुमक्खी (एपिस सिराना इण्डिका) : यह मधुमक्खी सम्पूर्ण भारतवर्ष में पायी जाती है । यह पीलापन लिए हुए भूरे रंग की होती है । अंधेरे स्थानों जैसे पुरानी इमारतों, जंगलों, पेड़ों के खोखलों

दीवारों, गुफाओं आदि में यह 6–8 समांतर छत्ते बनाती है । ये मधुमक्खी स्वभाव से नम्र व शान्त होती हैं और इसे सरलता से पाला जा सकता है। मधुमक्खी पालक इसे प्रातिक घरों से पकड़ कर मधुमक्खी पेटिका में रखकर पालते हैं। यह एक उद्यमशील मधुमक्खी है एवं अच्छी मात्रा में शहद एकत्रित करती है। इसकी एक कालोनी से औसतन 2–3 किलोग्राम शहद प्रतिवर्ष प्राप्त होता है।

(2) चट्टानी मधुमक्खी (एपिस डोर्सोटा) : इस मधुमक्खी के भंवर अथवा भौंवरा के नाम से भी जाना जाता हैं यह सम्पूर्ण भारतवर्ष में पायी जाती है। पहाड़ी क्षेत्रों में यह समुद्र तल से 1000 मीटर की ऊंचाई तक मिलती है। इसकी कालोनियाँ कम तापक्रम पर एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर चली जाती हैं। ये मधुमक्खियाँ एक ही छत्ता बनाती हैं जो लगभग 1.5 से 2.1 मीटर चौड़ा व 0.6 से 1.2 मीटर लम्बा होता है। इसका छत्ता प्रायः चट्टानों पर लटकता रहता है। ये मधुमक्खियाँ अत्यन्त उग्र प्रवृत्ति की होती हैं और छेड़छाड़ करने पर मानव का दूर तक पीछा कर आक्रमण करती हैं ये बड़ी मात्रा में शहद एकत्रित करती हैं। ये अपना कार्य प्रातः जल्दी आरम्भ कर देती हैं इनके एक छत्ते से 40 किलोग्राम तक शहद प्रतिवर्ष प्राप्त होता है। शहद प्रायः छत्ते के अगले भाग मे पाया जाता है।

(3) छोटी मधुमक्खी (एपिस फ्लोरिया) : यह मधुमक्खी सम्पूर्ण देश में पायी जाती है मगर समुद्र तल से 335 मीटर की ऊंचाई पर बहुत कम पायी जाती है। यह जल्दी–जल्दी स्थान बदलती है एवं एक स्वान पर इसकी कॉलोनी 5 माह से अधिक नहीं रहती है। ये मधुमक्खी एक छत्ता बनाती है जिसका आकार हथेली के बराबर होता है। यह शाखाओं, बाड़ों, पेड़ों, गुफाओं, घरों की चिमनियों, खाली बक्सों, लकड़ियों के ढेरों आदि पर अपना छत्ता बनाती है। इसकी रानी सुनहरी भूरी व नर काले होते हैं। श्रमिक, रानी एवं नरों की अपेक्षा छोटे होते हैं जो चमकीले नारंगी रंग का आभास देती हैं। ये मधुमक्खियाँ शहद एकत्रित करने में कमजोर होती हैं और इसके छत्ते से प्रतिवर्ष लगभग 1 किलोग्राम शहद प्राप्त होता है।

(4) यूरोपियन या इटालियन मधुमक्खी (एपिस मेलीफेरा) : यह मधुमक्खी यूरोप, अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया की निवासी है जो भारत में पूर्ण रूप से स्थापित हो गयी है। इसका स्वभाव नम्र होता है। यह बंद स्थानों पर समांतर छत्ते बनाती है। इसकी रानी भारी मात्रा में अण्डे देती है। यह एक अच्छी शहद एकत्रित करने वाली मधुमक्खी है। इसकी एक कालोनी का औसतन शहद उत्पादन 40 से 50 किलोग्राम प्रतिवर्ष है।

मधुमक्खी परिवार के सदस्य : मधुमक्खी की कॉलोनी में तीन प्रकार के सदस्य होते हैं। सभी सदस्य कालोनी के विभिन्न कार्य आपस में मिल–ज ुलकर पूरा करते हैं। प्रत्येक सदस्य का कार्य एवं दायित्व निर्धारित होता है जिसे वे कालोनी के हित में ईमानदारी व परिश्रम से निभाते हैं। प्रत्येक सदस्य एक–दूसरे पर आश्रित होता है।

1) रानी मधुमक्खी : प्रत्येक कॉलोनी में सदैव एक रानी होती है। रानी पूर्ण रूप से विकसित मादा मधुमक्खी होती है एवं पूरी मधुमक्खी कॉलोनी की मां होती है। यदि किसी कारण से कॉलोनी में दो रानियां हो जायें तो दोनों आपस में तब तक लड़ेगी जब तक कि दोनों में से एक की मौत न हो जाये। रानी छत्ते के दूसरे सदस्यों से बड़ी, सुन्दर, चमकदार तथा अपने लंबे पेट के कारण आसानी से पहचानी जाती है। यह अपना भोजन स्वयं नहीं कर सकती। श्रमिक मधुमक्खियां ही इसे भोजन कराती हैं। इसका भोजन भी विशेष प्रकार का होता है जिसे रॉयल जैली' कहते हैं । जो युवा श्रमिक मधुमक्खियों की लार ग्रंथियों द्वारा पैदा किया जाता है। रानी का कार्य केवल अण्डे देना है। सक्रिय अवधि में यह 800–2000 अण्डे प्रतिदिन तक देती है। यह अपनी इच्छा तथा आवश्यकतानुसार निषेचित व अनिषेचित अण्डे दे सकती है। निचित अण्डे से निकली इल्लियां को जब "रॉयल जैली" खिलाई जाती है तो रानी मधुमक्खी पैदा होती है। जब "रॉयल जैली" के साथ–साथ मकरंद व पराग का मिश्रण खिलाया जाता है तो श्रमिक मधुमक्खियाँ पैदा होती हैं।

2) श्रमिक : यह मादा मधुमक्खियाँ ही होती है मगर इनके प्रजनन अंग पूर्ण विकसित नहीं होते हैं। ये 'श्रमिक कोष्ठ' से पैदा होती है। इस मधुमक्खी में मातृत्व की भावना बहुत अधिक होती है। सभी ज्ञानेन्द्रिया पूर्ण विकसित होती हैं। इसके पेट अथवा उदर के अंतिम सिरे पर एक आरी के समान डंक होता है जिसे ये अपने व अपनी कॉलोनी के बचाव के लिये ही प्रयोग में लाती है। मिक मधुमक्खियाँ डंक का प्रयोग करने के उपरांत कुछ समय बाद मर जाती है। अतः ये अपने डंक का प्रयोग बहुत ज्यादा मजबूरी आने पर ही करती है। मधुमक्खी कॉलोनी में श्रमिक मधुमक्खियों की संख्या सर्वाधिक (95 से 99 प्रतिशत) होती है। सक्रिय समय मार्च–अप्रैल तथा सितम्बर–अक्टूबर में इनकी आयु 6 से 7 सप्ताह एवं सर्दियों में 6 माह तक होती है । ये अपने जीवन का पहला आधा भाग कॉलोनी में रहकर विभिन्न कार्य जैसे–अण्डे, लार्वा का पालन–पोषण, रानी व नरों को भोजन कराने, मोम पैदा कर नये छत्ते बनाने, पुराने छत्तों की मरम्मत करने बड़ी मक्खियों द्वारा लाये गये मकरद को विभिन्न कोष्ठों में रखने मकरंद से शहद तैयार करने तथा शत्रुओं से कॉलोनी की रक्षा करने आदि में व्यतीत करती है।

3) नर : ये मधुमक्खी कॉलोनी के नर सदस्य होते हैं। ये शरीर में श्रमिक व रानी मधुमक्खियों से अधिक मोटे, मजबूत व बड़े होते हैं परन्तु लम्बाई में छोटे होते हैं। उदर व पेट का पिछला सिरा कुछ गोलाई लिए होता है। इनमें डंक, पराग व मकरंद एकत्रित करने के अंग व मोम ग्रन्थियाँ आदि नहीं होती हैं इनकों श्रमिक मधुमक्खियाँ भोजन व पोषण इत्यादि कराती है। इनका प्रमुख कार्य रानी के साथ संभोग करना है। नर केवल एक बार संभोग करते हैं व इसके उपरान्त मर जाते हैं। इनकी आयु 57 दिन की होती है। अण्डे से पूर्व विकसित नर बनने में 24 दिनों का समय लगता है। वर्षा व सर्दी में इनकी संख्या नगण्य रहती है।

मधुमक्खी पालन के आर्थिक महत्व एवं लाभ :

मधुमक्खियां मानव समाज के लिये बहुत उपयोगी कीट है। मधुमक्खी पालन को अधिक लाभकारी बनाने हेतु मधुमक्खी पालन में विविधिकरण करने की आवश्यकता है। इस प्रकार मधुमक्खी से मधु एवं मोम के अलावा अन्य पदार्थ जैसे राजअवलेह, मधुमक्खी विश, पराग एवं मधुमक्खी गोद का उत्पादन करने से अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। ये बहुमूल्य पदार्थे निम्नलिखित हैः–

शहद : शहद मीठा द्रव्य है जिसे मधुमक्खियाँ फूलों से लाए मकरंद से बनाती हैं। मधुमक्खियां फूलों की मकरंद ग्रन्थियों से मकरंद एकत्रित करती है और उसे गाढ़े द्रव्य के रूप में संसाधित करती हैं यह द्रव्य या तरल छतो के कोष्ठों में संचित रहता है जहां इसे भविष्य के उपयोग के लिये संसाधित किया जाता है। मधुमक्खियों को शहद का संग्रहण, संसाधित करने और छत्तों को बन्द करने में 2–3 सप्ताह का समय लगता है। शहद पर मौसम तथा मकरंद देने वाले फूलों की किस्मों का गहरा प्रभाव पड़ता है। शहद मे भारी मात्रा में शर्कराएँ, खनिज, विटामिन, एंजाइम एवं पराग होता है। शर्कराओं में लेबुलोस (फ्रक्टोस) व डेक्ट्रोस (ग्लूकोस) प्रमुख है। शहद का सापेक्षित घनत्व 14 होता है जो

तापमान के बदलाव से बदल जाता है। शहद का उपयोग भोजन के रूप में अच्छे स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन के लिए किया जाता है।

मोम : श्रमिक मधुमक्खियाँ शहद खाने के बाद अपनी मोम ग्रंथियों से मोम का उत्पादन करती है जो "मधुमक्खी–मोम" कहलाता है। इसका उपयोग पॉलिश, प्रसाधन, पेंटिंग आदि बनाने में किया जाता है। भारत में मधुमक्खी मोम का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत चट्टानी मधुमक्खी एपिस डोर्सटा है।

पराग : मधुमक्खियाँ पराग फूलों से इकठ्ठा करती है। यह प्रौढ़ एवं शिशु मधुमक्खी के भोजन का मुख्य अंश जो शरीर के विकास में मदद करता है। इसमें प्रोटीन, वसा एवं सुक्ष्म पौष्टिक तत्व पाये जाते है, एक मधुमक्खी परिसर से लगभग 15–20 किग्रा0 पराग प्रतिवर्ष उत्पादन किया जा सकता है। पराग मधुमक्खी के मोम बनने में भी काफी मदद करता है। पराग एवं मधु मिला भोजन खाने से श्रमिक एवं नर मधुमक्खी की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। पराग के अभाव में रानी मधुमक्खी अण्डा देना बन्द कर देती है। पराग उत्पादन करने के लिए निकास द्वार पर पौलेन ट्रेप लगा दिया जाता है। इसमें बने छिद्र (4.7 मिली) से श्रमिक मक्खी जब अन्दर जाती है तो उसके पिछले पैर फैल जाते है एवं पराग कण बक्से के द्वार पर लगे पौलिन ट्रेप में गिर जाते है। इस तरह एक दिन में पराग बाहुल्य मौसम में एक किग्रा. तक पराग एक मैलीफेरा वंश से इकठ्ठा किया जा सकता है।

मधुमक्खी पालन के लाभ :

- ❖ पुष्प रस व पराग का सदुपयोग, आय व स्वरोजगार का सृजन।
- ❖ शुद्वमधु, रायल जेली उत्पादन, मोम उत्पादन, पराग, मौनी विष आदि।
- ❖ मधुमक्खी उत्पाद जैसे मधु, रायलजेली व पराग के सेवन से मानव स्वस्थ एवं निरोगित होता है।
- ❖ मधु का नियमित सेवन करने से तपेदिक, अस्थमा, कब्जियत, खून की कमी, रक्तचाप की बीमारी नहीं होती है। रायल जेली का सेवन करने से ट्यूमर नहीं होता है और स्मरण शक्ति व आयु में वृद्धि होती है।
- ❖ मधु मिश्रित पराग का सेवन करने से प्रास्ट्रेटाइटिस की बीमारी नहीं होती है। मौनी विष से गाठिया, बताश व कैंसर की दवायें बनायी जाती हैं। बी– थिरैपी से असाध्य रोगों का निदान किया जाता है।

डॉ. आर. एन. शर्मा
प्रसार शिक्षा निदेशक

निदेशक की कलम से

अक्टूबर माह में कृषि कार्य

प्रिय किसान भाईयों,

1. यह बारानी चने की बुवाई करने का उचित समय है। आर.एस.जी.–888 (अनुभव), सी. जे.एस.–515, सी.एस.जे.डी.–884 (आकाश, आर.एस.जी.–973 (आमा), आर.एस.जी. –991 (अपर्णा) चने की उत्तम किस्में हैं। चने की बुवाई हेतु 80–100 किलो बीज प्रति हैक्टेयर प्रयोग में लेवें तथा बुवाई से पूर्व बीजों को जड़ गलन व उखटा रोग की रोकथाम हेतु कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम या थाइरम 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।
2. चना (अगेती) में दीमक की रोकथाम के लिए फिप्रोनिल 5 एस.सी.10 मिली लीटर प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके ही बुवाई करें।
3. चने की सिंचित फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु पेन्डीमिथिलीन 30 ई. सी. 750 ग्राम सक्रिय तत्व/हैक्टेयर बुवाई के बाद किन्तु बीज उगने से पूर्व 600 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
4. सरसों की फसल में अंकुरण के 7–10 दिन में पेन्टेड बग व आरा मक्खी का प्रकोप दिखाई देता है। इसकी रोकथाम हेतु फिप्रोनिल 0.3 ग्राम चूर्ण का 20–25 किग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव करें।
5. सरसों की फसल में सफेद रोली से बचाव के लिए मेंकोजेब + मैटालेक्सिल दवा 6 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से बीजोपचार करें।
6. मटर की अर्किल, हरा बोना, जवाहर मटर–4, अगेती–6, आजाद पी. –1, आजाद पी.–89 इत्यादि उन्नत किस्में हैं। प्रति हैक्टेयर 80–100 किलोग्राम बीज प्रयोग में लेवें। जड़ गलन से बचाव हेतु बीजो को बुवाई से पूर्व थायरम 2.5 ग्राम या 6 ग्राम ट्राईकोडरमा विरीडी प्रति किलो बीज दर से उपचारित करें।
7. पपीते की फसल में पर्ण कुंचन एवं मोजेक रोग की रोकथाम हेतु रोगग्रस्त पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देवें तथा रोग के प्रसार को रोकने के लिए थाइमेथोक्सोम 25 प्रतिशत ई.सी. का 0.2 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
8. बेर के फलों का आकार मटर के दाने के समान होने पर फल मक्खी कीट से बचाव के लिए मैलाथियान 50 ई.सी. 1.5 मिली. प्रति लीटर या थायोडिकार्ब 75 प्रतिशत डब्ल्यूपी का 2 ग्राम/लीटर के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।
9. गाय एवं भैंस को खनिज मिश्रण खिलाना चाहिए

प्रमुख संरक्षक : डॉ. त्रिभुवन शर्मा
संरक्षक : डॉ. आर.एन. शर्मा
प्रधान सम्पादक : डॉ. सन्तोष देवी सामोता
डॉ. बी. एल. आसीवाल
डॉ. बसन्त कुमार भींचर
डॉ. शीला खड़र्कवाल
तकनीकी परामर्श : डॉ. एम.आर. चौधरी
डॉ. आर. पी. घासोलिया
डॉ. डी. के. जाजोरिया
डॉ. रोशन चौधरी

बुक पोस्ट

डाक टिकट

पत्रिका सम्बन्धी आप अपने सुझाव, आलेख एवं अन्य कृषि सम्बन्धी नवीनतम जानकारियाँ हमारे मेल jobnerkrishi@sknau.ac.in पर भेजे।

प्रकाशक एवं मुद्रक : निदेशालय, प्रसार शिक्षा, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर के लिए अम्बा प्रिन्टर्स, जोबनेर से मुद्रित।